मत-विमत

वैश्विक संकट के माहौल में आदिवासियों का नजरिया नई राह दिखा सकता है, उनकी आवाज सुनी जाए

अशीष कोठारी 29 March, 2023 07:00 am IST

विकल्प संकल्प से जुड़ी महिलाएं | फोटो: अशीष कोठारी

"हम तो कहीं दूसरी जगह रह सकते हैं, पर तेंदुआ कहां जाएगा?" यह साधारण सा दिखने वाला सवाल प्रकाश भोइर ने जब पूछा तो सभा में माहौल गरमा गया.

Advertisement

प्रकाश, पश्चिमी भारत के वारली आदिवासी हैं. वे गायक और चित्रकार भी हैं और मुंबई के किनारे मेट्रो रेल के लिए जंगल कटाई के खिलाफ लड़ाई में सक्रिय हैं. महाराष्ट्र सरकार बेहतर सार्वजनिक परिवहन के नाम पर इस परियोजना (जिसमें मेट्रो गाड़ियों के लिये शेड बनाये जाएंगे, वन भूमि पर) को न्यायसंगत ठहरा रही है, उसका मानना है कि 2 करोड़ महानगरीय लोगों को इससे फायदा होगा. लेकिन आदिवासी समुदाय, पर्यावरणविद और मानव अधिकार कार्यकर्ताओं ने इस पर सवाल उठाए हैं. उनका कहना है कि यह ऊष्णकटिबंधीय जंगल आदिवासियों का घर भी है.

सरकार की सोच में यह विकास का हिस्सा है, जिसमें पारिस्थितिकीय (इकोलॉजी) और सामाजिक मुद्दों का बहुत कम ख्याल रखा जाता है और आदिवासियों की आदिम जीवन शैली की भी इसमें बहुत कम जगह है. वनों में रहने वाले समुदायों की उस जीवन शैली को यह परियोजना खत्म करेगी, जो

मुंबई की बहुत संसाधनों को गटकने वाली जीवन पद्धति की अपेक्षा टिकाऊ है. यहां बहुत से वन्य जीव भी रहते हैं.

प्रकाश भोइर, '*आदिवासी व अन्य सामुदायिक दृष्टिकोण विकल्प संगम*' में बोल रहे थे. इस संगम में आदिवासी, पशुपालक, किसान, अन्य समुदाय और नागरिक समाज संस्थाएं हिस्सा ले रही थीं. यह संगम 6 से 8 नवंबर, 2022 को आयोजित हुआ था. इसकी मेजबानी आंध्र प्रदेश में टिंबकटू कलेक्टिव संस्था ने की थी, जिसने राज्य के 300 गांवों में बराबरी और आजीविका व पर्यावरण के टिकाऊपन को बढ़ावा देने की पहल की है.

इस संगम को कल्पवृक्ष और इनर क्लाइमेट एकेडमी ने एक राष्ट्रीय सहायक जुट के साथ आयोजित किया था. इस संगम में देशभर के समुदायों की विविध तरह से रहने, जीने और जानने की पद्धतियों को सामने लाने पर जोर था. इनके बीच आपसी सहयोग और उन्हें सक्षम बनाने की समझदारी की कोशिश करना था. इसमें 30 प्रतिभागी थे, जिनमें आदिवासी समुदाय जैसे वारली, मिशमी, दीमासा, गोंड, सोलिगा, चखासांग, ओरांव, मीणा, और लेपचा, पशुपालक मालधारी और वन गुज्जर और तेलंगाना की दलित महिलाएं शामिल थीं.

**अच्छी पत्रकारिता मायने रखती है,
संकटकाल में तो और भी अधिक**

दिप्रिंट आपके लिए ले कर आता है कहानियां जो आपको पढ़नी चाहिए, वो भी वहां से जहां वे हो रही हैं

हम इसे तभी जारी रख सकते हैं अगर आप हमारी रिपोर्टिंग, लेखन और तस्वीरों के लिए हमारा सहयोग करें.

अभी सब्सक्राइब करें

आदिवासी व अन्य सामुदायिक दृष्टिकोण विकल्प संगम कार्यक्रम | फोटो: अशीष कोठारी

यह भी पढ़ें: कैसे तितलियों, पक्षियों और पतंगों की प्रजातियों का संरक्षण कर हिमालय के युवा दिखा रहे राह

सभ्यताओं का टकराव

संगम में प्रतिभागियों ने संस्कृति और सभ्यता के मूल्यों के टकराव के कई उदाहरण दिए, जिन्हें सत्र की शुरुआत में भोइर ने उठाया था. हिमालय में उत्तर-पूर्व भारत के लेपचा समुदाय की तीस्ता नदी पर बनाये जा रहे जलविद्युत परियोजना के खिलाफ लड़ाई चल रही है. यह संघर्ष सिर्फ गांवों के विस्थापन, जंगलों व जीव-जंतुओं के डुबान के खिलाफ ही नहीं है, बल्कि यह संस्कृति और ऐसी जीवन पद्धति के खत्म होने के खिलाफ भी है, जो मुख्यधारा की व्यवस्था से बहुत अलग है. सरकार व कंपनियों द्वारा नदी को बिजली उत्पादन का संसाधन माना जा रहा है, जबकि लेपचा आदिवासी उसे जीवनदायिनी मानते हैं, वह भी अपनी आत्मा के साथ जीवित है, ऐसी सोच रखते हैं.

Advertisement

भारत की 7-8 फीसदी आदिवासी आबादी हैं, लगभग 8-10 फीसदी पशुपालक समुदाय हैं और करीब 35 फीसदी छोटे और सीमांत किसान (दो हेक्टेयर से कम भूमि वाले) हैं. इनमें से कुछ एक के ऊपर एक हो सकते हैं, पर हम करीब 40 फीसदी भारत की आबादी की बात कर रहे हैं, जिसमें लगभग 50 करोड़ लोग शामिल हैं. ये लोग आमतौर पर भारत की विकास नीतियों में हाशिये पर हैं. राजनैतिक रूप से निर्णय लेने की प्रक्रिया में उपेक्षित और शोषण के शिकार हैं.

इसके साथ, आम धारणा यह रही है कि ऐसे समुदाय 'पिछड़े' हैं, इन्हें मुख्यधारा में लेकर आना है और आधुनिक अर्थव्यवस्था के अंतर्गत दान-पुण्य का पात्र बनना है. भारत सरकार के जनजातीय मामलों के मंत्रालय ने घोषणा की है कि वर्ष 2026 तक 35,000 आदिवासी बसाहटों को आदर्श गांव की तरह विकसित किया जाएगा. लेकिन दूसरी तरफ, देशभर में आदिवासियों की लगातार जमीन व जंगल हड़पे जा रहे हैं.

राज्य सत्ता के लिए, वारली, लेपचा, ओरांव और सोलिगा जैसे आदिवासियों का वैश्विक नजरिया कोई महत्व नहीं रखता, बल्कि जल्द ही वे आधुनिक युक्तिसंगत विचार और जीवनशैली, बेहतर जीवन के नाम पर उन्हें विस्थापित करने मे लगी है. यह व्यवहार गहरे स्तर पर विद्यमान है, मैंने कई बार शहर में रहने वाले लोगों से (यहां तक कि बच्चों से भी) आदिवासियों के बारे में चर्चा करते हुए सुना है, जो उन्हें मनुष्य से कमतर समझते हैं. और ऐसा सोचते हैं कि वे शिकार करते हैं, कंद-मूल खाते हैं, वनोपज एकत्र करते हैं, पशुपालक हैं और गुजर-बसर करने के लिए खेती करते हैं, जो अतीत से संबद्ध हैं और उन्हें आधुनिक औद्योगिकीकरण और सेवा आधारित काम की तरफ ले जाना है.

जब मैंने उनका इस पर ध्यान दिलाया कि इन आदिवासियों का जलवायु संकट में कोई योगदान नहीं है, बल्कि उल्टे 'सभ्य' और 'विकसित' आधुनिक समाज ही इसका कारण है या जब मैं याद दिलाता हूं कि जिस सततता की पूरे दुनिया को अब खोज है, यह समुदाय पीढ़ियों से जीते आ रहे हैं, तब कुछ लोग ठहरकर सोचते हैं और पुनर्विचार करते हैं, जबकि अधिकांश लोग उसे नकारते हैं.

यह भी पढ़ें: नवजीवन की नगरी पर संकट, तमिलनाडु के ओरोविल समुदाय पर दिल्ली के सत्ताधीशों की पड़ी नजर

लोगों का जवाबः प्रतिरोध और विकल्प

संगम में शामिल समुदायों के सभी प्रतिनिधि अपने क्षेत्रों में विनाशकारी विकास परियोजनाओं का विरोध कर रहे हैं, जो सरकारों द्वारा थोपे जा रहे हैं. मयालमित लेपचा 'एफेक्टेड सिटीजन ऑफ तीस्ता' नामक समूह से जुड़ी हैं. तीस्ता नदी घाटी पर पनबिजली परियोजना के तहत बांध बनाया जा रहा है,

इस विनाशकारी परियोजना का यह समूह विरोध कर रहा है.

मालधारी समुदाय ने उनके 'बन्नी पशु उचेरक मालधारी संगठन' के द्वारा चरागाह की जमीन पर अतिक्रमण के खिलाफ मुकदमा दर्ज किया है, व सफलता पायी है. राजस्थान के धात्री ट्रस्ट की साधना मीणा पर, खनन का विरोध करने के लिए शारीरिक हमले हुए हैं, पर वह अभी भी डटी हैं.

इसके अलावा, इन समुदायों ने रचनात्मक विकल्प भी पेश किया है. इसमें उनकी पारंपरिक व्यवस्था (जिसे वे मुख्यधारा मानते हैं) और नवाचार की नई पहल शामिल है. नवा जिबी, जो अरुणाचल प्रदेश की इदू मिस्मी जनजाति से हैं, ने बताया कि किस तरह उनके समुदाय ने अपने पूर्वजों के क्षेत्र को 'इलोपा इतुगू कम्युनिटी इको-कल्चरल संरक्षित क्षेत्र' घोषित किया था. यहां किसी भी ऐसी गतिविधि जो वन्य जीवों और जैव विविधता को नुकसान पहुंचाए, पर पाबंदी है.

सेनो त्सुहाह, नागालैंड के चखासांग समुदाय से हैं. उन्होंने बताया कि किस तरह महिला अधिकारों के लिए 'नार्थ-ईस्ट नेटवर्क' संगठन बनाया, टिकाऊ खेती और हस्तशिल्प को आजीविका के तौर पर बढ़ावा दे रही है और सहभागिता वीडियो को अंतर-पीढ़ीगत सीख के लिए इस्तेमाल कर रही है. के. मोगुलम्मा और जी. नरसम्मा दलित महिलाएं हैं और तेलंगाना की संस्था डेक्कन डेवलपमेंट सोसायटी से जुड़ी हैं, जिसकी 5,000 महिला सदस्य ने देसी बीज, परंपरागत ज्ञान और धरती माता का सम्मान करते हुए खाद्य स्वराज हासिल किया है.

तमिलनाडु के नीलगिरी पहाड़ में 'आदिवासी मुनेत्र संगम' के आदिवासियों ने सामूहिक वन अधिकार के लिए दावा किया है, जो उनसे ब्रिटिश व स्वतंत्र भारत की सरकार ने छीन लिया था. इसी प्रकार का अधिकार कर्नाटक के सोलिगा आदिवासियों ने पाया है, व इस आधार पर वन्य जीव अभयारण्य के नाम पर बेदखली का विरोध कर रहे हैं, व वन उपज तथा जैविक कॉफी जैसी फसल की खेती कर नई-पुरानी आजीविका से जीवन चला रहे हैं.

अमीर हामजा और अन्य पशुपालक उनके 'वन गुज्जर आदिवासी युवा संगठन' के माध्यम से समुदाय में अधिकारों के प्रति जागरूकता लाने का काम कर रहे हैं.

इन प्रयासों में समुदाय अपने आप से कई सवाल पूछते है, जैसे: पारंपरिक और आधुनिक मेल में उपयुक्त संतुलन क्या हो? उनकी संस्कृति और ज्ञान के कौन से पहलू आज भी प्रासंगिक हैं और उनमें क्या बदलाव की जरूरत है? कैसे और किस तरह एकतरफा धार्मिक प्रणाली एक अति-राष्ट्रवादी राज्य द्वारा थोपी जा रही है, क्या व कैसे इसका विरोध करें?

पारंपरिक जीवन में क्या समस्याएं व कमजोरियां हैं, जैसे निर्णय प्रक्रिया में

लिंगभेद, जातिवाद इत्यादि और इनका सामना कैसे करें? क्या आधुनिक तकनीक मददगार है या बाधा पहुंचाती है? मातृभाषा (भारत में आश्चर्यचकित करने वाली ऐसी 800 भाषाएं हैं) को कैसे टिकाऊ बनाएं या पुनर्जीवित करें? राजनैतिक सीमाओं पर भी कैसे पुनर्विचार किया जा सकता है, जब वे पारिस्थितिकीय और सांस्कृतिक धारा के आड़े आती हैं, ताकि टिकाऊ व समान जीवनयापन बनाए रखने की प्रक्रिया को बढ़ावा मिले?

लेपचा समुदाय दो राज्यों (सिक्किम व पश्चिम बंगाल) में बंट गये हैं, व सोलिगा आदिवसी भी दो राज्यों (कर्नाटक और तमिलनाडु) में हैं. दोनों की सीमा से बाहर भूपरिदृश्य के हिसाब से शासन व्यवस्था की मांग है. इस तरह की पहल ऐसे अभियान से जुड़ती है, जो पारिस्थितिकीय, भौगोलिक, व सांस्कृतिक संबंधों को मायने रखती है, राजनैतिक सीमा के बाहर. ऐसी सोच धीरे-धीरे दुनिया के कई देशों में उभर रही है.

वैश्विक नजरिया विकल्प संगम के प्रतिभागी एक व्यापक गठबंधन के लिए प्रतिबद्ध हैं, जो उनकी जीवन पद्धति और जीवन को टिकाउ रख सके, स्थानीय स्वशासन पर जोर दे, विविध भाषा, संस्कृति, धर्म, व ज्ञान को कायम रखे या पुनर्जीवित करे और आंतरिक असमानताओं में बदलाव करे.

प्रतिभागियों को एहसास है कि आज सबसे महत्वपूर्ण और कठिन चुनौती वैश्विक नजरिए में टकराव है. आधुनिक पूंजीवाद, राज्य सत्तावाद, पितृसत्ता, रंगभेद और जातिवाद एक-दूसरे के साथ मजबूत हैं और मानव-केंद्रित सोच से जुड़े हैं जो प्रकृति को एक संसाधन के रूप में देखती है और उसका शोषण करती है. और उस वैश्विक नजरिए की विविधता को दरकिनार करती है या मिटाती है, जो संगम में प्रतिभागियों ने प्रस्तुत की है.

लेकिन आज के वैश्विक संकट के माहौल में, अगर तथाकथित शिक्षित, शहरी, आधुनिक दुनिया वाले लोग पृथ्वी के साथ शांति की चाह रखते हैं, तो उन्हें इन लोगों के ब्रह्मांड ज्ञान व जीवन पद्धति की आवाज को सुनना चाहिए. किस तरह वे अपने आप को प्रकृति का हिस्सा समझते हैं, कैसे वे न केवल अपने बारे में बल्कि तेंदुए के बारे मे भी चिंतित हैं, ऐसी समग्रता में देखने वाली सोच उनके पास है.

यह बदलाव भारी व मुश्किल लगता है, पर निश्चित ही मानवता को इससे ज्यादा महत्वपूर्ण और तत्काल जरूरत क्या हो सकती है?

(बाबा मायाराम द्वारा अनुवादित)

(संपादन: कृष्ण मुरारी)

(अशीष कोठारी, कल्पवृक्ष व विकल्प संगम, पुणे से जुडे हैं, यह लेख बाबा मायाराम द्वारा अनुवादित है. व्यक्त विचार निजी हैं)

यह भी पढ़ें: भारत को वैकल्पिक ऊर्जा चाहिये लेकिन वैश्विक अगुवाई के लिए अलग राह अपनाने की जरूरत: अशीष कोठारी